

जनक-सुनयना संवाद, भरतजी की महिमा

चौपाई :

*** सुनि भूपाल भरत ब्यवहारु। सोन सुगंध सुधा ससि सारु॥ मूदे सजन नयन पुलके तन।
सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥॥

भावार्थ:

सोने में सुगंध और (समुद्र से निकली हुई सुधा में चन्द्रमा के सार अमृत के समान भरतजी का व्यवहार सुनकर राजा ने (प्रेम विह्वल होकर) अपने (प्रेमाश्रुओं के) जल से भरे नेत्रों को मूँद लिया (वे भरतजी के प्रेम में मानो ध्यानस्थ हो गए)। वे शरीर से पुलकित हो गए और मन में आनंदित होकर भरतजी के सुंदर यश की सराहना करने लगे॥१॥

*** सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि॥ धरम राजनय ब्रह्मबिचारु।
इहाँ जथामति मोर प्रचारु॥२॥

भावार्थ:

(वे बोले-) हे सुमुखि! हे सुनयनी! सावधान होकर सुनो। भरतजी की कथा संसार के बंधन से छुड़ाने वाली है। धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार- इन तीनों विषयों में अपनी बुद्धि के अनुसार मेरी (थोड़ी-बहुत) गति है (अर्थात् इनके संबंध में मैं कुछ जानता हूँ)॥२॥

*** सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही॥ बिधि गनपति अहिपति
सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद॥३॥

भावार्थ:

वह (धर्म, राजनीति और ब्रह्मज्ञान में प्रवेश रखने वाली) मेरी बुद्धि भरतजीकी महिमा का वर्णन तो क्या करे, छल करके भी उसकी छाया तक को नहीं छू पाती! ब्रह्माजी, गणेशजी, शेषजी, महादेवजी, सरस्वतीजी, कवि, ज्ञानी, पण्डित और बुद्धिमान-॥३॥

*** भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥ समुझत सुनत सुखद सब
काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥४॥

भावार्थ:

सब किसी को भरतजी के चरित्र, कीर्ति, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्यसमझने में और सुनने में सुख देने वाले हैं और पवित्रता में गंगाजी का तथास्वाद (मधुरता) में अमृत का भी तिरस्कार करने वाले हैं॥४॥

दोहा :

*** निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि। कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति

सकुचानि॥288॥

भावार्थ:

भरतजी असीम गुण सम्पन्न और उपमारहित पुरुष हैं। भरतजी के समान बस भरतजी ही हैं, ऐसा जानो। सुमेरु पर्वत को क्या सेर के बराबर कह सकते हैं? इसलिए (उन्हें किसी पुरुष के साथ उपमा देने में) कवि समाज की बुद्धि भी सकुचा गई॥288॥

चौपाई :

*** अगम सबहि बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥ भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥1॥

भावार्थ:

हे श्रेष्ठ वर्णवाली! भरतजी की महिमा का वर्णन करना सभी के लिए वैसे ही अगम है जैसे जलरहित पृथ्वी पर मछली का चलना। हे रानी! सुनो, भरतजी की अपरिमित महिमा को एक श्री रामचन्द्रजी ही जानते हैं, किन्तु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते॥1॥

*** बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ॥ बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं। सब कर भल सब के मन माहीं॥2॥

भावार्थ:

इस प्रकार प्रेमपूर्वक भरतजी के प्रभाव का वर्णन करके, फिर पत्नी के मन की रुचि जानकर राजा ने कहा- लक्ष्मणजी लौट जाँ और भरतजी वन को जाँ, इसमें सभी का भला है और यही सबके मन में है॥2॥

*** देबि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥ भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की॥3॥

भावार्थ:

परन्तु हे देवि! भरतजी और श्री रामचन्द्रजी का प्रेम और एक-दूसरे पर विश्वास, बुद्धि और विचार की सीमा में नहीं आ सकता। यद्यपि श्री रामचन्द्रजी समता की सीमा हैं, तथापि भरतजी प्रेम और ममता की सीमा हैं॥3॥

*** परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥ साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥4॥

भावार्थ:

(श्री रामचन्द्रजी के प्रति अनन्य प्रेम को छोड़कर) भरतजी ने समस्त परमार्थ, स्वार्थ और सुखों की ओर स्वप्न में भी मन से भी नहीं ताका है। श्री रामजी के चरणों का प्रेम ही उनका साधन है और वही सिद्धि है। मुझे तो भरतजी का बस, यही एक मात्र सिद्धांत जान पड़ता है॥4॥

दोहा :

*** भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ। करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप
बिलखाइ॥289॥

भावार्थ:

राजा ने बिलखकर (प्रेम से गद्गद होकर) कहा- भरतजी भूलकर भी श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा को मन से भी नहीं टालेंगे। अतः स्नेह के वश होकर चिंता नहीं करनी चाहिए॥289॥

चौपाई :

*** राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलक सम बीती॥ राज समाज प्रात जुग जागे।
न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥1॥

भावार्थ:

श्री रामजी और भरतजी के गुणों की प्रेमपूर्वक गणना करते (कहते-सुनते) पति-पत्नी को रात पलक के समान बीत गई। प्रातःकाल दोनों राजसमाज जागे और नहा-नहाकर देवताओं की पूजा करने लगे॥1॥

*** गे नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥ नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक
बिकल बनबास दुखारी॥2॥

भावार्थ:

श्री रघुनाथजी स्नान करके गुरु वशिष्ठजी के पास गए और चरणों की वंदना करके उनकारुख पाकर बोले- हे नाथ! भरत, अवधपुर वासी तथा माताएँ, सब शोक से व्याकुल और वनवास से दुःखी हैं॥2॥

*** सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू॥ उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा।
हित सबही कर रौरें हाथा॥3॥

भावार्थ:

मिथिलापति राजा जनकजी को भी समाज सहित क्लेश सहते बहुत दिन हो गए, इसलिए हे नाथ! जो उचित हो वही कीजिए। आप ही के हाथ सभी का हित है॥3॥

*** अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुल के लखि सीलु सुभाऊ॥ तुम्ह बिनु राम सकल सुख
साजा। नरक सरिस दुहु राज समाजा॥4॥

भावार्थ:

ऐसा कहकर श्री रघुनाथजी अत्यन्त ही सकुचा गए। उनका शील स्वभाव देखकर (प्रेम और आनंद से) मुनि वशिष्ठजी पुलकित हो गए। (उन्होंने खुलकर कहा-) हे राम! तुम्हारे बिना (घर-बार आदि) सम्पूर्ण सुखों के साज दोनों राजसमाजों को नरक के समान हैं॥4॥

दोहा :

*** प्रान-प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम। तुम्ह तजि तात सोहात गूह जिन्हहि तिन्हहि

बिधि बाम॥290॥

भावार्थ:

हे राम! तुम प्राणों के भी प्राण, आत्मा के भी आत्मा और सुख के भी सुख हो। हेतात! तुम्हें छोड़कर जिन्हें घर सुहाता है, उन्हें विधाता विपरीत है॥290॥

चौपाई :

*** सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥ जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानु।
जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥1॥

भावार्थ:

जहाँ श्री राम के चरण कमलों में प्रेम नहीं है, वह सुख, कर्म और धर्म जल जाए, जिसमें श्री राम प्रेम की प्रधानता नहीं है, वह योग कुयोग है और वह ज्ञान अज्ञान है॥1॥

*** तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं॥ राउर आयसु सिर सबही
कें। बिदित कृपालहि गति सब नीकें॥2॥

भावार्थ:

तुम्हारे बिना ही सब दुःखी हैं और जो सुखी हैं वे तुम्हीं से सुखी हैं। जिस किसी के जी में जो कुछ है तुम सब जानते हो। आपकी आज्ञा सभी के सिर पर है। कृपालु(आप) को सभी की स्थिति अच्छी तरह मालूम है॥2॥ जनक-वशिष्ठादि संवाद, इंद्र की चिंता, सरस्वती का इंद्र को समझाना

*** आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥ करि प्रनामु तब रामु सिधाए।
रिषि धरि धीर जनक पहिं आए॥3॥

भावार्थ:

अतः आप आश्रम को पधारिए। इतना कह मुनिराज स्नेह से शिथिल हो गए। तब श्रीरामजी प्रणाम करके चले गए और ऋषि वशिष्ठजी धीरज धरकर जनकजी के पास आए॥3॥

*** राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभायँ सुहाए॥ महाराज अब कीजिअ सोई। सब
कर धरम सहित हित होई॥4॥

भावार्थ:

गुरुजीने श्री रामचन्द्रजी के शील और स्नेह से युक्त स्वभाव से ही सुंदर वचनराजा जनकजी को सुनाए (और कहा-) हे महाराज! अब वही कीजिए, जिसमें सबका धर्म सहित हित हो॥4॥

दोहा :

*** ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल। तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि
काल॥291॥

भावार्थ:

हे राजन्! तुम ज्ञान के भंडार, सुज्ञान, पवित्र और धर्म में धीर हो। इस समय तुम्हारे बिना इस दुविधा को दूर करने में और कौन समर्थ है?॥291॥

चौपाई :

*** सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरगु बिरागे॥ सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं। आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥1॥

भावार्थ:

मुनि वशिष्ठजी के वचन सुनकर जनकजी प्रेम में मग्न हो गए। उनकी दशा देखकर ज्ञान और वैराग्य को भी वैराग्य हो गया (अर्थात् उनके ज्ञान-वैराग्य छूट से गए)। वे प्रेम से शिथिल हो गए और मन में विचार करने लगे कि हम यहाँ आए, यह अच्छा नहीं किया॥1॥

*** रामहि रायँ कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना॥ हम अब बन तैं बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥2॥

भावार्थ:

राजा दशरथजी ने श्री रामजी को वन जाने के लिए कहा और स्वयं अपने प्रिय के प्रेम को प्रमाणित (सच्चा) कर दिया (प्रिय वियोग में प्राण त्याग दिए), परन्तु हम अब इन्हें वन से (और गहन) वन को भेजकर अपने विवेक की बड़ाई में आनन्दित होते हुए लौटेंगे (कि हमें जरा भी मोह नहीं है, हम श्री रामजी को वन में छोड़कर चले आए, दशरथजी की तरह मरे नहीं!)॥2॥

*** तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेम बस बिकल बिसेषी॥ समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिँ सहित समाजा॥3॥

भावार्थ:

तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण यह सब सुन और देखकर प्रेमवश बहुत ही व्याकुल हो गए। समयका विचार करके राजा जनकजी धीरज धरकर समाज सहित भरतजी के पास चले॥3॥

*** भरत आइ आगें भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे॥ तात भरत कह तेरहुति राऊ। तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ॥4॥

भावार्थ:

भरतजी ने आकर उन्हें आगे होकर लिया (सामने आकर उनका स्वागत किया) और समयानुकूल अच्छे आसन दिए। तिरहुतराज जनकजी कहने लगे हे तात भरत! तुमको श्री रामजी का स्वभाव मालूम ही है॥4॥

दोहा :

*** राम सत्यव्रत धरम रत सब कर सीलु स्नेहु। संकट सहतसकोच बस कहिअ जो आयसु देहु ॥292॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं, सबका शील और स्नेह रखने वाले हैं, इसीलिए वे संकोचवश संकट सह रहे हैं, अब तुम जो आज्ञा दो, वह उनसे कही जाए॥292॥

चौपाई :

*** सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥ प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू॥॥

भावार्थ:

भरतजी यह सुनकर पुलकित शरीर हो नेत्रों में जल भरकर बड़ा भारी धीरज धरकर बोले हे प्रभो! आप हमारे पिता के समान प्रिय और पूज्य हैं और कुल गुरु श्रीवशिष्ठजी के समान हितैषी तो माता-पिता भी नहीं है॥1॥

*** कौंसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू॥ सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी॥2॥

भावार्थ:

विश्वामित्रजी आदि मुनियों और मंत्रियों का समाज है और आज के दिन ज्ञान के समुद्र आप भी उपस्थित हैं। हे स्वामी! मुझे अपना बच्चा, सेवक और आज्ञानुसार चलने वाला समझकर शिक्षा दीजिए॥2॥

*** एहिं समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन में बोलब बाउर॥ छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता॥3॥

भावार्थ:

इस समाज और (पुण्य) स्थल में आप (जैसे जानी और पूज्य) का पूछना! इस पर यदि मैं मौन रहता हूँ तो मलिन समझा जाऊँगा और बोलना पागलपन होगा तथापि मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूँ। हे तात विधाता को प्रतिकूल जानकर क्षमा कीजिएगा॥3॥

*** आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जगु जाना॥ स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू। बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू॥4॥

भावार्थ:

वेद, शास्त्र और पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत जानता है कि सेवा धर्म बड़ा कठिन है। स्वामी धर्म में (स्वामी के प्रति कर्तव्य पालन में) और स्वार्थ में विरोध है (दोनों एक साथ नहीं निभ सकते) वैर अंधा होता है और प्रेम को ज्ञान नहीं रहता (मैं स्वार्थवश कहूँगा या प्रेमवश दोनों में ही भूल होने का भय है)॥4॥

दोहा :

*** राखि राम रुख धरमु ब्रतु पराधीन मोहि जानि। सब कें संमत सब हित करिअ प्रेमु पहिचानि॥293॥

भावार्थ:

अतएव मुझे पराधीन जानकर (मुझसे न पूछकर) श्री रामचन्द्रजी के रुख (रुचि), धर्म और (सत्य के) व्रत को रखते हुए जो सबके सम्मत और सबके लिए हितकारी हो आप सबका प्रेम पहचानकर वही कीजिए॥293॥

चौपाई :

*** भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ॥ सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे।
अरथु अमित अति आखर थोरे॥1॥

भावार्थ:

भरतजी के वचन सुनकर और उनका स्वभाव देखकर समाज सहित राजा जनक उनकी सराहना करने लगे। भरतजी के वचन सुगम और अगम, सुंदर, कोमल और कठोर हैं। उनमें अक्षर थोड़े हैं, परन्तु अर्थ अत्यन्त अपार भरा हुआ है॥॥

*** ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥ भूप भरतू मुनि सहित
समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू॥2॥

भावार्थ:

जैसे मुख (का प्रतिबिम्ब) दर्पण में दिखता है और दर्पण अपने हाथ में है, फिर भी वह (मुख का प्रतिबिम्ब) पकड़ा नहीं जाता, इसी प्रकार भरतजी की यह अद्भुत वाणी भी पकड़ में नहीं आती (शब्दों से उसका आशय समझ में नहीं आता)। (किसी से कुछ उत्तर देते नहीं बना) तब राजा जनकजी, भरतजी तथा मुनि वशिष्ठजी समाज के साथ वहाँ गए, जहाँ देवता रूपी कुमुदों को खिलाने वाले (सुख देने वाले) चन्द्रमा श्री रामचन्द्रजी थे॥2॥

*** सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा॥ देवँ प्रथम कुलगुर गति
देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेषी॥3॥

भावार्थ:

यह समाचार सुनकर सब लोग सोच से व्याकुल हो गए, जैसे नए (पहली वर्षा के) जल के संयोग से मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओं ने पहले कुलगुरु वशिष्ठजी की (प्रेमविह्वल) दशा देखी, फिर विदेहजी के विशेष स्नेह को देखा,॥3॥

*** राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हियँ हारे॥ सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए
अलेख सोच बस लेखा॥4॥

भावार्थ:

और तब श्री रामभक्ति से ओतप्रोत भरतजी को देखा। इन सबको देखकर स्वार्थी देवता घबड़ाकर हृदय में हार मान गए (निराश हो गए)। उन्होंने सब किसी को श्री राम प्रेम में सराबोर देखा। इससे देवता इतने सोच के वश हो गए कि जिसका कोई हिसाब नहीं॥4॥

दोहा :

*** रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु। रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ
अकाजु॥294॥

भावार्थ:

देवराज इन्द्र सोच में भरकर कहने लगे कि श्री रामचन्द्रजी तो स्नेह और संकोच के वश में हैं, इसलिए सब लोग मिलकर कुछ प्रपंच (माया) रचो, नहीं तो काम बिगड़ा (ही समझो)॥294॥

चौपाई :

*** सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥ फेरि भरत मति करि निज माया।
पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥॥

भावार्थ:

देवताओं ने सरस्वती का स्मरण कर उनकी सराहना (स्तुति) की और कहा- हे देवी! देवता आपके शरणागत हैं, उनकी रक्षा कीजिए। अपनी माया रचकर भरतजी की बुद्धि को फेर दीजिए और छल की छाया कर देवताओं के कुल का पालन (रक्षा) कीजिए॥1॥

*** बिबुध बिनय सुनि देबिसयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥ मो सन कहहु भरत मति फेरु।
लोचन सहस न सूझ सुमेरु॥2॥

भावार्थ:

देवताओं की विनती सुनकर और देवताओं को स्वार्थ के वश होने से मूर्ख जानकर बुद्धिमती सरस्वतीजी बोलीं- मुझसे कह रहे हो कि भरतजी की मति पलट दो! हजार नेत्रों से भी तुमको सुमेरु नहीं सूझ पड़ता!॥2॥

*** बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकड़ निहारी॥ सो मति मोहि कहत करु
भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी॥3॥

भावार्थ:

ब्रह्मा, विष्णु और महेश की माया बड़ी प्रबल है! किन्तु वह भी भरतजी की बुद्धि की ओरताक नहीं सकती। उस बुद्धि को, तुम मुझसे कह रहे हो कि भोली कर दो (भुलावे में डाल दो)! अरे! चाँदनी कहीं प्रचंड किरण वाले सूर्य को चुरा सकती है?॥3॥

*** भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥ अस कहि सारद गड़ बिधि
लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥॥

भावार्थ:

भरतजी के हृदय में श्री सीता-रामजी का निवास है। जहाँ सूर्य का प्रकाश है, वहाँ कहीं अँधेरा रह सकता है? ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक को चली गईं। देवता ऐसे व्याकुल हुए जैसे रात्रि में चकवा व्याकुल होता है॥4॥

दोहा :

*** सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु। रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति
उचाटु॥295॥

भावार्थ:

मलिन मन वाले स्वार्थी देवताओं ने बुरी सलाह करके बुरा ठाट (षड्यन्त्र) रचा। प्रबल माया-जाल
रचकर भय, भ्रम, अप्रीति और उच्चाटन फैला दिया॥295॥

चौपाई :

*** करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥ गए जनकु रघुनाथ समीपा।
सनमाने सब रबिकुल दीपा॥1॥

भावार्थ:

कुचाल करके देवराज इन्द्र सोचने लगे कि काम का बनना-बिगड़ना सब भरतजी के हाथ है। इधर
राजा जनकजी (मुनि वशिष्ठ आदि के साथ) श्री रघुनाथजी के पास गए। सूर्यकुल के दीपक श्री
रामचन्द्रजी ने सबका सम्मान किया,॥1॥

*** समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥ जनक भरत संबादु सुनाई। भरत
कहाउति कही सुहाई॥2॥

भावार्थ:

तब रघुकुल के पुरोहित वशिष्ठजी समय समाज और धर्म के अविरोधी (अर्थात् अनुकूल) वचन
बोले। उन्होंने पहले जनकजी और भरतजी का संवाद सुनाया। फिर भरतजी की कही हुई सुंदर
बातें कह सुनाई॥2॥

*** तात राम जस आयसु देहू। सो सबु करै मोर मत एहू॥ सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले
सत्य सरल मृदु बानी॥3॥

भावार्थ:

(फिर बोले-) हे तात राम! मेरा मत तो यह है कि तुम जैसी आज्ञा दो, वैसा ही सब करें! यह
सुनकर दोनों हाथ जोड़कर श्री रघुनाथजी सत्य, सरल और कोमल वाणी बोले-॥3॥

*** बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥ राउर राय रजायसु होई। राउरि
सपथ सही सिर सोई॥4॥

भावार्थ:

आपके और मिथिलेश्वर जनकजी के विद्यमान रहते मेरा कुछ कहना सब प्रकार से भद्दा
(अनुचित) है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा होगी, मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ वह
सत्य ही सबको शिरोधार्य होगी॥4॥

दोहा :

*** राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत। सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न ऊतरु देत॥296॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी की शपथ सुनकर सभा समेत मुनि और जनकजी सकुचा गए (स्तम्भित रह गए)। किसी से उत्तर देते नहीं बनता, सब लोग भरतजी का मुँह ताक रहे हैं॥296॥